राष्ट्रीय एकता तथा मानवाधिकार शिक्षा

डॉ0 निरंजना शर्मा

राजनीति शास्त्र विभाग, राजकीय महाविद्यालय खाड़ी, टिहरी गढ़वाल, उत्तराखंड, भारत

Correspondence Author: डॉ0 निरंजना शर्मा

Received 1 Apr 2026; Accepted 12 May 2026; Published 29 May 2026

DOI: https://doi.org/10.64171/JSRD.5.S3.70-74

सारांश

मानवाधिकार शिक्षा को वर्तमान दौर की शिक्षा व्यवस्था का एक ज्वलन्त प्रकरण कहा जा सकता है। मानवाधिकार शिक्षा से तात्पर्य मानवाधिकारों के सुनिश्चियन में शिक्षा के योगदान को सुनिश्चित करने वाली शिक्षा से है। नैसर्गिक जन्मजात अधिकारों के रूप में अथवा सवैधानिक मूल अधिकारों के रूप में प्रत्येक व्यक्ति के कुछ सार्वभौमिक अधिकार माने जाते हैं एवं इन अधिकारों की पूर्ति करना प्रत्येक सभ्य समाज का एक अनिवार्य कर्तव्य माना जाता है। भारत जैसे प्रजातान्त्रिक राष्ट्र में संविधान के द्वारा प्रत्येक नागरिक को समता, स्वातन्त्र्य, शोषण प्रतिषेध धार्मिक स्वतन्त्रता, शिक्षा प्राप्ति व सांस्कृतिक संरक्षण जैसे अनेक अधिकार प्रदत्त किये गये हैं । अतः शिक्षा के माध्यम से प्रत्येक नागरिक को इन अधिकारों को जानने एवं आवश्यकतानुसार इनका प्रयोग करके अपने जीवन को सुखमय बनाना है। वस्तुतः अपने अधिकारों की रक्षा करने तथा दूसरों के अधिकारों में बाधा न बनने की शिक्षा देना ही मानवाधिकार शिक्षा है जिसकी वर्तमान वैश्विक परिप्रेक्ष्य में सख्त आवश्यकता है।

मूलशब्दः मानवाधिकार शिक्षा, नागरिक, सामाजिक व्यवहार, राष्ट्रीय एकता

परिचय

किसी भी राष्ट्र के नागरिकों में विविधताओं तथा विभिन्नताओं का होना स्वाभाविक ही है। सम्भवतः विश्व में कोई ऐसा राष्ट्र नहीं होगा जहाँ के समस्त नागरिक एक जैसे हों। नागरिकों में जातीय, प्रजातीय, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, भाषायी या आर्थिक विभिन्नताओं का होना स्वाभाविक ही है। व्यवसाय, व्यापार, धर्मप्रचार या उपनिवेशवाद के फलस्वरूप विश्व के विभिन्न राष्ट्रों की जनसंख्याओं में पारस्परिक आदान–प्रदान हुआ है। जनसंख्याओं में आदान–प्रदान की इस प्रक्रिया के कारण एक ही राष्ट्र में अनेक धर्मों, अनेक भाषाओं या अनेक संस्कृतियों के व्यक्ति रह रहे हैं। भारतवर्ष के सम्बन्ध में यह विविधता तथा विभिन्नता और भी अधिक दृष्टिगोचर होती हैं। जहाँ यहाँ पर अनेक धर्मों व जातियों के, अनेक भाषाएँ बोलने वाले, अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक, साम्प्रदायिक व आर्थिक पृष्ठभूमि लिए व्यक्ति रहते है वहीं यहाँ पर अनेक प्रदेशों में नागरिक विभक्त है। सभी नागरिकों को अपने–अपने धर्म व जाति, भाषा व संस्कृति तथा प्रदेश से मोह होना मानव के जनित स्वभावगत ही है ! परन्तु संकुचित मनोवृत्ति तथा निहित स्वार्थों के कारण यहाँ पारस्परिक कलह, उन्माद, आन्दोलन तथा दंगे होते रहते हैं। किसी भी राष्ट्र के विकास में ऐसी कलह, साम्प्रदायिकता, विभिन्नता तथा मनोमालिन्य अत्यन्त घातक सिद्ध होते हैं। ये राष्ट्र की उन्नति को ध्वस्त कर सकते हैं। भारत जैसे राष्ट्र के लिए, जो कुछ समय पूर्व स्वतन्त्र हुआ है तथा विकास के पथ पर अग्रसित है, जातीयता, धार्मिकता, साम्प्रदायिकता, भाषा या प्रदेशीयता की संकुचित धारणा विशेषरूप से घातक सिद्ध हो सकती है। इससे राष्ट्रीय एकता तथा अखण्डता में बाधा उत्पन्न हो सकती है तथा राष्ट्र की विकास–योजनाएँ बुरी तरह से अस्त–व्यस्त हो जाती हैं। राष्ट्र की स्वतंत्रता व अखंडता को बनाये रखने तथा सुख समृद्धि में वृद्धि करने के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय एकता व समाकलन को प्रोत्साहित किया जाये। स्वतंत्रता प्राप्त करने के समय से यह महसूस होने लगा था कि भारत में राष्ट्रीय एकता के विकास की अत्यन्त आवश्यकता है। देश की विभिन्न रियासतों का भारतीय शासन में विलय राष्ट्रीय एकता व सौहार्द के प्रयासों का शुभारम्भ था परन्तु धार्मिक उन्मादता, साम्प्रदायिकता, भाषावाद और क्षेत्रीयता के कारण होने वाले दंगों तथा छोटे–छोटे निहित स्वार्थों के लिए वृहत भारत के हितों को नजरअन्दाज करने की प्रवृत्ति के बढने के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय एकता का सुनिश्चित करना आज की प्रमुख आवश्यकता है। संकुचित मनोवृत्ति तथा निहित स्वार्थवाली सभी विघटनात्मक प्रवृत्तियों को वांछनीय दिशा देकर राष्ट्रीय एकीकरण में शिक्षा एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है।

राष्ट्रीय एकता से अभिप्राय राष्ट्र की सभी इकाईयों राज्यों, धर्मों, जातियों, सम्प्रदायों या नागरिकों के एक साथ मिल–जुलकर राष्ट्र हित में कार्य करने से है। जब राष्ट्र के सभी नागरिक किसी राज्य, धर्म, जाति, सम्प्रदाय विशेष के हितों को त्यागकर सम्पूर्ण राष्ट्र के हितों को दृष्टि में रखकर सोचते हैं तथा कार्य करते हैं तब देश में राष्ट्रीय एकता की स्थिति का निर्माण होता है। दूसरे शब्दों में राष्ट्रीय एकता राष्ट्र के नागरिकों की ऐसी मानसिक व व्यावहारिक स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपने विचारों, विश्वासों तथा मान्यताओं को अपने राष्ट्र से जोड़ता है तथा राष्ट्र के प्रति निष्ठा प्रकट करते हुये राष्ट्रीय कल्याण व राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए कार्य है। राष्ट्रीय एकता का अर्थ राष्ट्र के विभेदक तत्वों को समाप्त करना नहीं है। राष्ट्रीय एकता भाषा, एक धर्म, एक सम्प्रदाय, एक जाति, एक संस्कृति लाने का कोई प्रस्ताव नहीं होता है वरन साम्प्रदायिकता, धार्मिकता, प्रान्तीयता, जातीयता या भाषा सम्बन्धी उन्मादों से मुक्त होकर राष्ट्रीय दृष्टिकोण से कार्य करने की भावना को प्रोत्साहन करना है। राष्ट्रीय एकता की स्थिति में प्रान्त, धर्म, सम्प्रदाय, जाति या भाषा की अपेक्षा राष्ट्र अधिक महत्वपूर्ण होता है तथा व्यक्ति सम्पूर्ण राष्ट्र के कल्याण के लिए प्रान्त, धर्म, सम्प्रदाय, जाति या भाषा के हित का बलिदान करने के लिए तत्पर रहते हैं। राष्ट्रीय एकता में विभिन्नताएँ व विविधताएँ होते हुए भी एकता का सूत्र होता है जो सभी को बाँधे रहता है तथा राष्ट्रीय विकास में सहायक सिद्ध होता है।

शिक्षा का योगदान

राष्ट्रीय एकता के विकास में साधारणतः प्रान्तीयता, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, सामाजिक व आर्थिक विषमतायें, भाषा सम्बन्धी विरोध, विभिन्न राजनीतिक विचारधाराएँ जैसे तत्व बाधक होते हैं। ये सभी तत्व राष्ट्रीय एकता व अखण्डता को विघटित कर सकते हैं। राष्ट्रीय एकता व अखण्डता को सुनिश्चित करने के लिए शिक्षा का आश्रय लिया जा सकता है। शिक्षा में वह शक्ति है जो राष्ट्र के भावी नागरिकों अर्थात् बालक–बालिकाओं के मस्तिष्क में राष्ट्रीय एकता व अखण्डता की आवश्यकता महत्व तथा भावना के संस्कार सरलता से उत्पन्न कर सकती है। उचित शिक्षा व्यवस्था द्वारा राष्ट्रीय एकता में बाधक तत्वों के प्रभावों को कम करके राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में प्रयास किया जा सकता है। राष्ट्रीय एकता समिति (1961) ने भी शिक्षा को राष्ट्रीय एकता का एक प्रभावी साधन माना है। शिक्षा द्वारा व्यक्ति के नकारात्मक दृष्टिकोण को बदलकर उसमें वांछनीय परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है। राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक उचित दृ ष्टिकोण, विचार संवेग तथा रुचियों के विकास में शिक्षा का उपयोग किया जा सकता है। इसके लिए शिक्षा–व्यवस्था में ऐसे परिवर्तन लाने होंगे जिससे राष्ट्रीय एकता को बढ़ाने के प्रयत्नों में सहायता मिल सके। इन परिवर्तनों में पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों व प्रशिक्षण–संस्थाओं में सुधार प्रमुख हैं। उपयुक्त पाठ्यक्रम व पाठ्यवस्तु को लागू करके तथा उपयुक्त शिक्षण–विधियों को अपनाकर छात्रों में राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास किया जा सकता है। राष्ट्रीय एकता की भावना के विकास में शिक्षा निम्न ढंग से योगदान कर सकती है–

- **राष्ट्रीय शिक्षा–व्यवस्थाः** देश के नागरिकों में राष्ट्रीय एकता को विकसित करने के लिए सम्पूर्ण देश में एक समान शिक्षा–व्यवस्था होनी चाहिए जिससे सभी को एक जैसी गुणवत्ता वाली शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर प्राप्त हो सकें। वर्तमान भारतीय समाज में अनेक प्रकार की शिक्षा–व्यवस्थायें हैं जिनमें शिक्षार्थी द्वारा प्राप्त की जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। समाज का एक वर्ग उच्च गुणवत्ता की शिक्षा प्राप्त करता है जबकि दूसरा वर्ग निम्न गुणवत्ता की शिक्षा प्राप्त करने के लिए बाध्य होता है। इसके अलावा एक तीसरा वर्ग शिक्षा प्राप्ति के अवसरों से वंचित ही रह जाता है। अतः राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहन देने के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था को विकसित किया जाये। जिससे शैक्षिक अवसरों की असमानता को समाप्त किया जा सके। इसके अलावा शिक्षा के राष्ट्रीय उद्देश्य भी निर्धारित किये जाने चाहिए जिसमें राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति पर भी पर्याप्त बल दिया जाये।
- **पाठ्यक्रमः** छात्रों में व्यापक दृष्टिकोण, सकारात्मक रुचियों व धनात्मक संवेगों के विकास के लिए आवश्यक है कि शिक्षा–संस्थानों की सभी शैक्षिक क्रियाओं में राष्ट्रीय एकीकरण की भावना प्रस्फुटित हो । इसके लिए पाठ्यक्रम का पुनर्गठन करके उसमें ऐसी पाठ्यवस्तु सम्मिलित करनी होगी जो राष्ट्रीय एकता पर अधिक से अधिक बल देती हो । इतिहास पढ़ाते समय समान सांस्कृतिक तत्वों पर बल दिया जाना, राष्ट्रीय एकता को विकसित कर सकेगा। स्वन्त्रतता संग्राम के इतिहास पर भी बल दिया जाना चाहिए।
- ऐतिहासिक तथ्यों को राष्ट्रीय संदर्भ में समझाया जाना चाहिए। भूगोल पढ़ाते समय भौगोलिक परिस्थितियों को शिक्षार्थियों के समक्ष राष्ट्रीय महत्व की दृष्टि से व्यक्त करना होगा। नागरिक शास्त्र में नागरिकों के कर्त्तव्यों पर बल दिया जाना चाहिए। अर्थशास्त्र शिक्षण में सम्पूर्ण राष्ट्र के आर्थिक विकास की आवश्यकता व महत्ता एवं राष्ट्र के आर्थिक विकास का राज्यों के विकास से सम्बन्ध भी पढ़ाया जाना चाहिए।
- मातृभाषा व राष्ट्रभाषा के साथ–साथ अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के अध्ययन का भी प्राविधान किया जाना चाहिए। इसके लिए त्रिभाषा सूत्र अपनाना होगा। क्योंकि ललित कलाओं की राष्ट्रीय चेतना व राष्ट्रीय एकता में सार्थक भूमिका है इसलिए ललित कलाओं तथा संगीत, साहित्य, नृत्य, लोकगीत व लोकनृत्य आदि को भी पाठ्यक्रम में रखा जाना चाहिए। इसके साथ–साथ राष्ट्रीय व सामाजिक सेवा कार्यक्रमों एवं सांस्कृति क्रियाकलापों को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाना चाहिए।
- **पाठ्यसहगामी क्रियायें**– पाठ्य सहगामी क्रियायें भी राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करने तथा राष्ट्रीय एकता बढ़ाने में सहायक हो सकती हैं। स्वन्त्रता दिवस, गणतन्त्र दिवस आदि राष्ट्रीय दिवसों को मनाते समय छात्रों को इनके महत्व को महसूस कराना चाहिए। शिक्षक दिवस, बाल दिवस, विकास दिवस जैसे नये दिवसों, जिनमें सभी धर्मों, मतों, सम्प्रदायों व संस्कृतियों के लोग सम्मिलित हों, को धूमधाम से मनाया जाना चाहिए। विभिन्न धर्मों के मुख्य–मुख्य मेलों व उत्सवों में सभी धर्मों के लोगों को आने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए तथा इन्हें आनन्द व उमंग से मनाया व देखा जाये। राष्ट्रीय नेताओं के जीवन–वृत्त, राष्ट्रीय इमारतों के इतिहास, राष्ट्रीय–चिन्हों जैसे राष्ट्रीय गान, राष्ट्रीय झंडा, राष्ट्रीय पक्षी, राष्ट्रीय पुष्प, राष्ट्रीय पशु आदि का ज्ञान छात्रों को कराया जाना चाहिए। शिक्षा संस्थानों में अन्तर्राज्यीय प्रतियोगिताओं का आयोजन भी समय–समय पर कराया जाना चाहिए। छात्रों के अन्य राज्यों के भ्रमण के लिए शैक्षिक भ्रमण–कार्यक्रम बनाये जाने चाहिए।

धार्मिक व नैतिक शिक्षा

राष्ट्रीय एकता के लिए नागरिकों में धार्मिक सहिगुता तथा नैतिकता का होना आवश्यक है। अतः सभी शिक्षा–संस्थाओं में धार्मिक व नैतिक शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। जिससे छात्रों में धार्मिक सहिष्णुता व नैतिकता की भावना उत्पन्न हो सके। सभी धर्मों का अध्ययन तथा नैतिक मूल्यों के विकास को धार्मिक व नैतिक शिक्षा में सम्मिलित करना चाहिए।

प्रौढ शिक्षा

प्रौढ़ नागरिकों में राष्ट्रीय हित में छोटे–छोटे निहित हितों के त्याग का संकल्प उत्पन्न करने के लिए प्रौढ़–शिक्षा एवं सतत शिक्षा कार्यक्रमों का उपयोग किया जाना चाहिए। प्रौढ़ों को साक्षर बनाकर तथा संचार साधनों जैसे रेडियो, दूरदर्शन, समाचार–पत्र आदि की सहायता से प्रौढ़ों में राष्ट्रीय एकता की भावना विकसित की जा सकती है।

शिक्षक

राष्ट्रीय एकता का कोई भी शैक्षिक कार्यक्रम, शिक्षकों के राष्ट्रीय दृ ष्टिकोण के अभाव में सफल नहीं हो सकता है। प्राध्यापकों के व्यवहार में देशप्रेम तथा राष्ट्रीय भावना परिलक्षित होनी चाहिए। उन्हें राष्ट्रीय एकता में विश्वास तथा आस्था होने के साथ–साथ राष्ट्रीय एकता विकास की विविध विधाओं में भी निपुण होना चाहिए। उन्हें न केवल

राष्ट्र की वरन सभी राज्यों, धर्मों व संस्कृतियों की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक व आर्थिक पृष्ठभूमि का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। इसके लिए प्राध्यापक प्रशिक्षण–संस्थाओं को अपने शैक्षिक कार्यक्रमों एवं शैक्षिक क्रियाकलापों में आवश्यक परिवर्तन करने चाहिए। सेवारत अध्यापकों के लिए भी अन्तर्सेवा कार्यक्रम प्रारम्भ किये जा सकते हैं। वास्तव में, राष्ट्र राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रीय एकता– तीनों एक ही वृक्ष की ऐसी शाखायें हैं जो एक दूसरे पर आश्रित है परन्तु अन्तिम अर्थात राष्ट्रीय एकता के अभाव में प्रथम दो अर्थात राष्ट्र व राष्ट्रीयता कभी भी अपना अस्तित्व खो सकती हैं। राष्ट्र की सुरक्षा, गरिमा व समृद्धि हेतु राष्ट्रीय एकता का विशेष महत्व है । जिस प्रकार किसी माता के लिए इससे बढ़कर सुखदायक कोई वस्तु नहीं हो सकती है कि उसकी सन्तान हिल मिलकर हँसी–खुशी से रहे व समृद्ध हो, ठीक उसी प्रकार किसी राष्ट्र के लिए सबसे सुखद यही है कि उसके समस्त नागरिक मिल जुल कर रहे तथा समृद्ध हों। इस दृष्टि से राष्ट्र के अस्तित्व के लिए नागरिकों में राष्ट्रीय एकता का होना अनिवार्य है। भारतवासियों के लिए राष्ट्रीय एकता व समाकलन एक चुनौती है तथा इसे किसी भी रूप में अनदेखा नहीं किया जा सकता है। राष्ट्रीय एकता राष्ट्रीय जीवन के सभी पहलुओं से सम्बन्धित है तथा राष्ट्र का तथा राष्ट्र के नागरिकों का विकास व सुख–वैभव राष्ट्रीय एकता पर निर्भर करता है। "विविधता में एकताष् ही हमारे जीवन का मूल मन्त्र होना चाहिए। समस्त भारत के नागरिकों को धर्म, जाति सम्प्रदाय को ध्यान में रखे बिना, एक दूसरे से मानसिक तारतम्य स्थापित करना चाहिए तथा राष्ट्रीय उत्थान के आदर्श को सामने रखकर कार्य करना चाहिए। विचार धाराओं के सभी अन्तरों को भूलकर भाई–चारे की भावना से कार्य करना, सभी धर्मों के विचारों का आदर करना, सभी सम्प्रदायों के लोगों का उचित सम्मान करना तथा राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान में अधिकतम योगदान करना, राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति में अत्यधिक सहायक होंगे। शिक्षा–कार्यक्रमों में वांछनीय परिवर्तन करके इन सभी लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

मानवाधिकारों के लिए शिक्षा

बीसवीं शताब्दी के अन्तिम कुछ दशकों तथा इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में मानवाधिकार एक चर्चित विषय रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय व स्थानीय मंचों पर इस शब्द की गूंज स्पष्ट सुनाई देती रही है। तथा शिक्षा, समाज विज्ञान व मानविकी का सम्भवतः कोई क्षेत्र ऐसा नहीं होगा जिसमें इस प्रकरण की पर्याप्त चर्चा न हुई हो। शिक्षा का क्षेत्र भी मानवाधिकार की चर्चा से वंचित नहीं रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में मानवाधिकार की चर्चा के दो पक्ष रहे हैं। प्रथम, शिक्षा संस्थाओं में मानवाधिकारों को कैसे सुनिश्चित किया जाये एवं द्वितीय, शिक्षा अन्य क्षेत्रों में मानवाधिकारों के सुनिश्चयन में कैसे योगदान कर सकती है। इस क्रम में मानवाधिकार शिक्षा जैसा एक नूतन प्रकरण शिक्षा के क्षेत्र में प्रतिस्थापित हो गया है। मानवाधिकार जहाँ उन मूलभूत, प्राकृतिक व सार्वभौमिक अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं को इंगित करती है। जिनके सभी मानव हकदार है, वहीं मानवाधिकार शिक्षा वृहद् शिक्षा व्यवस्था के उस पक्ष का निरूपण है। जो सभी नागरिकों को मानवाधिकारों के प्रति सजग बनाकर उनका उपभोग करके अपने मानव जीवन को श्रेष्ठतम बनाने की ओर प्रवृत्त करता है। मानवाधिकारों की संयुक्त राष्ट्र सार्वभौमिक घोषणा में कहा गया है कि सभी मानव प्राणी अस्मिता व अधिकारों की दृष्टि से जन्मजात रूप में स्वतन्त्र व समान है। उनमें तर्कशक्ति व अन्तर्मन है तथा उन्हें परस्पर भाईचारे की भावना से रहना चाहिए। इस परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकारों के अन्तर्गत जीवन का अधिकार, विचार व अभिव्यक्ति का अधिकार तथा विधि के समक्ष समता का अधिकार आते हैं। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 1 से 9 तक में कहा गया है कि "आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा मानवीय प्रकृति की अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान में एवं प्रजाति, लिंगभेद या धर्म के आधार पर कोई विभेद किये बिना मानवाधिकारों के लिए तथा मूलभूत स्वतन्त्रताओं के लिए आदरभाव को बढ़ाने व प्रोत्साहित करने में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना संयुक्त राष्ट्र संघ का उद्देश्य है। राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकारों के हनन को रोकने एवं नागरिकों के साथ उत्पीड़न, अमानवीय अथवा अपमानजनक व्यवहार की रोकथाम के लिए अनेक वैधानिक व्यवस्थाएँ जैसे अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालयों के साथ–साथ संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद व मानवाधिकार आयोग आदि का गठन किया गया है।

मानवाधिकार

मानवाधिकारों को प्राकृतिक अधिकार, सार्वभौमिक अधिकार अथवा संवैधानिक मूल अधिकार जैसे समानार्थी शब्दों से भी व्यक्त किया जाता है। प्राकृतिक अधिकार शब्द जहाँ एक दार्शनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, वहीं सार्वभौमिक अधिकार एक सामाजिक परिप्रेक्ष्य का सूचक है जबकि संवैधानिक मूल एक राजनैतिक अथवा संवैधानिक स्वीकारोक्ति को इंगित करता है। प्राकृतिक अधिकार वस्तुतः ईश्वरीय व्यवस्था के द्वारा जन्मजात रूप से सभी इन्सानों को बिना किसी विभेद के उत्पन्न होने से सम्बन्धित है। सार्वभौमिक अधिकारों की उत्पत्ति सामाजिक जनजागरण व सुधार सम्बन्धी विचारों व आन्दोलन के फलस्वरूप हुई है। सम्पूर्ण विश्व में मान्य सामाजिक व नौतिक व्यवस्था प्रणाली के अनुरूप इन अधिकारों को निर्धारित किया जाना अपेक्षिक है। संवैधानिक अधिकारों का उद्भव प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था से हुआ है राजनैतिक क्रियाशीलता के प्रतिफल के रूप में आज लगभग पूर्ण विश्व प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था को अपना रहा है। संविधान में नागरिकों को प्रदान किये गये मूल अधिकार इसी वर्ग में आते हैं। वेद, कुरान, बाइबिल जैसे धर्म ग्रन्थों में व्यक्तियों के नैसर्गिक कर्तव्यों, अधिकारों व उत्तरदायित्वों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में प्राचीन ईरान के साइरस महान तथा भारत में ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में अशोक महान ने अपने–अपने साम्राज्यों में मानवाधिकारों को सुनिश्चित करने की दिशा में सार्थक पहल की थी। साइरस ने अपने–अपने साम्राज्यों में मानवाधिकारों को सुनिश्चित करने की दिशा में सार्थक पहल की थी। साइरस ने अपने राज्य में धार्मिक विश्वास की स्वतन्त्रता व दास प्रथा का उन्मूलन दो प्रमुख सुधारों को लाने के साथ–साथ महिला व पुरुषों को समान रूप से स्वतन्त्रता व सुरक्षा, आवागमन की छूट, समपत्ति आदि का अधिकार प्रदान किया था। कलिंग विजय के उपरान्त अशोक ने अहिंसा व जनकल्याण के मार्ग का अनुसरण करते हुए सर्वधर्म समभाव, सहनशीलता, माता–पिता, गुरुओं व धार्मिक नेताओं के प्रति आदर तथा सभी के प्रति उदारता व समानता जैसे मानवाधिकार सुनिश्चित किये थे। सत्रहवीं व अठारहवीं शताब्दी में जोहन लॉक जैसे दार्शनिकों ने तथा संयुक्त राज्य अमेरिका की स्वतन्त्रता के घोषणापत्र में एवं फ्रांस की व्यक्तियों व नागरिकों के अधिकार सम्बन्धी घोषणा में मानवाधिकारों के सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं। अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में थामस पैने, जोहन स्टुआर्ट मिल व हिगल जैसे दार्शनिकों तथा बीसवीं शताब्दी में महात्मा गाँधी जैसे नेताओं ने महान–अधिकारों के प्रति सजागता व आग्रह का इजहार

किया। सामाजिक, औद्योगिक व राजनैतिक क्रान्तियों ने भी हड़ताल, बाल मजदूरी निषेध, महिला समानता, विचार–अभिव्यक्ति जैसे मानवाधिकारों की माँग को प्रोत्साहित किया। द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका से आहत मानव–समाज ने संयुक्त राष्ट्र सामान्य सभा की अगुवाई में 1948 में जारी किये गये मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में वैश्विक स्तर पर स्वतन्त्रता, न्याय व शान्ति आधार के रूप में मानवीय, नागरिक, आर्थिक तथा सामाजिक अधिकारों पर जोर देते हुए इन्हें सभी राष्ट्रों के द्वारा प्रोत्साहित करने की माँग की गई था। सन् 1976 में संयुक्त राष्ट्र के द्वारा अंगीकृत नागरिक व राजनैतिक अधिमाप पर अन्तर्राष्ट्रीय सहमति में व्यक्तियों को आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकार (ई.इस.सी.आर.) प्रदान करने की दिशा में कार्य करने की विश्व के देशों द्वारा वचनबद्धता व्यक्त की गई है। अपराध, उत्पीड़न प्रजाति विभेदीकरण व यौन भेदभाव आदि को रोकने तथा बालाधिकार को सुनिश्चित करने जैसे विभिन्न मुद्दों पर शिखर सम्मेलनों, वार्ताओं व गोष्ठियों में भी प्रकारान्तर से मानव–अधिकारों के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण प्रावधान किये गये हैं। अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक व राजनैतिक अधिकार सहमति ने मानवाधिकार समिति के नाम से एक अठारह सदस्यीय समिति बनाई है जो मानवाधिकार सम्बन्धी मानकों के अनुपालन को बढ़ावा देती है तथा मानवाधिकार उल्लंघन पर नजर रखती है। मानवाधिकार घोषणा के सम्बन्ध में वर्ष 1993 में आहूत मानवाधिकार विश्व सम्मेलन में वियना घोषणा व कार्यान्वयन कार्यक्रम स्वीकार किया गया है। इसके अतिरिक्त मानवाधिकार पर संयुक्त राष्ट्र उच्चायुक्त के नेतृत्व में संयुक्त राष्ट्र के द्वारा अनेक निकायों का गठन मानवाधिकार का पर्यवेक्षण व अध्ययन करने हेतु किया गया है। हमारे राष्ट्र में भी सन् 1993 में राष्ट्रीय व राज्य स्तर पर मानवाधिकार आयोगों के गठन का प्रावधान करके मानवाधिकारों को सुनिश्चित करने का सद्प्रयास किया जा चुका है।

मानवाधिकारों के प्रकार

मानवाधिकारों को नकारात्मक अधिकार व सकारात्मक अधिकार के रूप में भी वर्गीकृत किया जा सकता है। नकारात्मक अधिकारों से तात्पर्य उन अधिकारों से है जिनका हनन सरकार तथा किसी वैयक्तिक ईकाई के द्वारा नहीं किये जाना अपेक्षित है। इनके अन्तर्गत जीवन का अधिकार, सुरक्षा का अधिकार, दासत्व में स्वतन्त्रता का अधिकार, समता का अधिकार, आवागमन का अधिकार, अभिव्यक्ति का अधिकार, धार्मिक विश्वास का अधिकार तथा समूह बनाने का अधिकार जैसे अधिकार आते हैं। सकारात्मक अधिकारों से अभिप्राय उन अधिकारों से है जिनको पूर्ण करना राज्य का दायित्व होता है। इनके अन्तर्गत शिक्षा का अधिकार, स्वास्थ्य का अधिकार, अस्मिता का अधिकार व जीविका का अधिकार जैसे अधिकार समाहित रहते हैं। इस वर्गीकरण के अतिरिक्त मानवाधिकारों की तीन पीढ़ियो की चर्चा भी की जाती है। प्रथम पीढ़ी में नागरिक व राजनैतिक अधिकारों का द्वितीय पीढ़ी में सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक अधिकारों के अन्तर्गत अश्मितापूर्ण जीवन जीने व राजनैतिक प्रतिभाग के अधिकार आते हैं, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक अधिकारों में शिक्षा जीवनयापन व सांस्कृतिक अक्षुण्णता जैसे अधिकार आते हैं एवं पुष्टात्मक अधिकारों में शान्ति व स्वच्छ परिवेश जैसे अधिकार आते हैं। परन्तु यहाँ यह इंगित करना आवश्यक व उचित ही होगा कि विभिन्न अधिकार परस्पर सम्बन्धित रहते हैं तथा उन्हें पूर्ण यर्थाथता युद्धक्षों में नहीं बाँटा जा सकता है। राजनैतिक प्रतिभाग के लिए कुछ–न–कुछ शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक होने के कारण शिक्षा को प्रकारान्तर से राजनैतिक अधिकार भी माना जा सकता है। सेवर्गीकरण अथवा पीढ़ियों के भेद को नजर अन्दाज करते हुए प्रमुख मानव–अधिकारों को निम्नवत् ढंग से छह प्रकारों से सूचीबद्ध किया जा सकता है–

- सुरक्षा सम्बन्धी अधिकार हत्या, उत्पीड़न, बलात्कार व यौन उत्पीडन, कत्ले–आम, आत्महत्या जैसे अपराधों की रोकथाम ।
- स्वातन्त्र्य का अधिकार धर्म व विश्वास, आवागमन, संगठन, समूह जैसे क्षेत्रों में स्वतन्त्रता का संरक्षण ।
- राजनैतिक अधिकार विचार अभिव्यक्ति, प्रतिरोध–प्रतिभाग आदि के द्वारा राजनैतिक क्रिया कलाप में संलग्नता की छूट।
- उचित प्रक्रिया अधिकार बिना सुनवाई के कैद, गोपनीय सुनवाई अथवा अथ्यधिक दंड आदि के द्वारा कानूनी व्यवस्था के दुरूपयोग का निषेध ।
- समता का अधिकार नागरिक के रूप में व कानून के समझ समानता का व्यवहार तथा सामाजिक भेदभाव विहीनता का प्रतिरक्षण ।
- कल्याण का अधिकार अत्यधिक निर्धनता व भुखमरी से बचाव तथा शिक्षा, मनोरंजन, रोजगार जैसे आर्थिक प्रावधानों का सुनिश्चयन ।

भारतीय सन्दर्भ में मानवाधिकार

देश तथा विदेश में मानवाधिकारों से सम्बन्धित मुद्दों के प्रति व्यक्त चिन्ता एवं बदलती सामाजिक वास्तविकताओं तथा अपराध व हिंसा की प्रकृति से सम्बन्धित उभरती प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर भारत सरकार न्याय देने के वर्तमान कानूनों, विधियों तथा प्रशासन की समीक्षा करके उनमें अधिक जवाबदेही व पारदर्शिता लाने का प्रयास कर रही है। इस क्रम में मानवाधिकारों पर देशव्यापी चिन्तन–मनन हुआ है। इसी क्रम में मानव अधिकारों के प्रभावी ढंग से संरक्षण को सुनिश्चित बनाने के लिए राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राज्य मानवाधिकार आयोग तथा मानवाधिकार न्यायालय गठित करने के उद्देश्य से भारतीय संसद ने सन् 1994 में अधिनियम संख्या 10 के रूप में मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 पारित किया है। इस अधिनियम में मानवाधिकार को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि मानवाधिकारों से अभिप्राय संविधान में प्रतिरक्षित जीवन, स्वतन्त्रता, समानता व मानव अस्मिता से सम्बन्धित अथवा अन्तर्राष्ट्रीय सहमतियों में उल्लेखित तथा भारत में न्यायालयों में प्रवर्तित अधिकारों से है।
भारत के संविधान की उद्देशिका में अनेक मानवाधिकारों को सुनिश्चित करने का संकल्प परिलक्षित होता है। संविधान की इस उद्देशिका के द्वारा 26 नवम्बर 1949 को संविधान को अंगीकृत करते समय समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याययय विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म व उपासना की स्वतन्त्रता तथा प्रतिष्ठा व अवसर की समता को प्राप्त कराने के साथ–साथ उन सभी में व्यक्ति की गरिमा को सुनिश्चित करने वाली बंधुता को बढ़ाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। इसके अतिरिक्त संविधान के भाग तीन में नागरिकों के मूल अधिकारों की घोषणा भी की गई है जो निम्नवत् ढंग से लिपिबद्ध किये जा सकते हैं–
समता का अधिकार, स्वातन्त्र्य का अधिकार, शोधण के विरुद्ध अधिकार, धार्मिक स्वंतत्रता का अधिकार, सांस्कृतिक व शैक्षिक अधिकार, संवैधानिक उपचार का अधिकार।

मानवाधिकारों का औचित्य

मानवाधिकारों के औचित्य तथा इसकी आलोचना की चर्चा के बिना सम्भवतः इस प्रकरण की प्रस्तुति अपूर्ण ही रहेगी। मानवाधिकारों के

सैद्धान्तिक विवेचकों के द्वारा इन्हें कई विभिन्न दृष्टिकोणों से सामाजिक अपेक्षाओं के अनुरूप, औचित्यपूर्ण तथा परमावश्यक बताया गया है। जैवकीय सैद्धान्तिक दृष्टिकोण वाले विद्वानों के अनुसार मानव के सामाजिक व्यवहार की पुनरावृत्तिक लाभ वस्तुतः सहानुभूति, सहयोग व परोपकार की भावना से सम्बन्धित रहते हैं जिसके फलस्वरूप मानव समाज अनेक अधिकारों के रूप में कुछ सामाजिक अपेक्षाओं को विकसित कर लेता है जो चक्रीय क्रम में मानवाधिकारों की परिणति के रूप में प्रतिस्थापित हो रहे हैं। नैसर्गिक नियमों के रूप में मानवाधिकारों पर जोर देने वाले विद्वान नैसर्गिक रूप से अपेक्षित नैतिक आचरण व्यवस्ता की मांग के रूप में मानवाधिकारों के औचित्य को सिद्ध करते हैं। वे वेद, कुरान, बाइबिल जैसे धर्मगन्थों तथा विभिन्न धार्मिक उपदेशकों के उपदेशों मेंवर्णित न्याय, समानता, मानव अस्मिता जैसे विविध सार्वभौमिक लक्ष्यों के आधार पर मानवाधिकारों के सुनिश्चियन को उचित ठहराते हैं। कुछ अन्य विद्वान मानवाधिकारों के औचित्य को लाभ या प्रतिफल के रूप में विवेचित करते हैं। उनके अनुसार किसी भी समाज के द्वारा नियामक निकायों के द्वारा बनाये गये नियम, कानून, व्यवस्था को व्यक्तियों के द्वारा प्रतिफल के रूप में सुरक्षा व आर्थिक लाभों की प्राप्ति की अपेक्षा में स्वीकार करता है। वस्तुतः परस्पर स्वीकृति व दूसरों के अधिकारों का सम्मान ही किसी व्यक्ति अपने अधिकारों की दिशा में पहला कदम होता है। निःसन्देह मानवाधिकार सर्वातिशायी श्रेष्ठ तथा महत्वपूर्ण सिद्धान्त के प्रति एक नमन है जो मानवता के सार्वभौमिक मूल्यों की प्राप्ति के प्रति प्रेरित रहता है। मानवाधिकारों के लिए सनातन रूप से स्थापित नियम व व्यवस्थाओं के पालन की जरूरत है न कि कृत्रिम ढंग से निरूपित विधि व्यवस्था की आवश्यकता है। मानवाधिकारों के सम्प्रत्यय की वकालत करने वाले विद्वानों के विपरीत कुछ विद्वानों ने इनके प्रोत्साहन की आलोचना भी की है। ऐसे विद्वानों का मानना है कि मानवाधिकारों के सम्प्रत्यय का उदय पश्चिमी देशों में आये राजनैतिक उदारवाद के दृष्टिकोण से हुआ है तथा यह सांस्कृतिक साम्राज्यवाद व ईसाई धर्म परम्परा से प्रभावित है। जिसे अन्य धर्मों वाली शासन व्यवस्थाओं में यथावत लागू करना सम्भव नहीं है। यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि मानवाधिकारों को लागू करने का दायित्व किसका है? क्योंकि मानवाधिकारों की मांग नागरिकों को राज्य के उत्पीड़न से बचाने की आवश्यकता के महसूस किये जाने पर हुई है, इसलिए सभी मानव संगठनों व नेतृत्व का कर्तव्य है कि वे जहाँ भी कार्यरत हो वहां पर हस्तक्षेप करते हुए सभी व्यक्तियों के अधिकारों का संरक्षण करें। विभक्त राष्ट्रीय प्रतिबद्धताएँ, जो नागरिकों में समानता के स्थान पर विभेदों पर जोर देती हैं, मानवाधिकार आन्दोलन पर प्रतिलोम प्रभाव छोड़ सकती है। इसके विपरीत कुछ विचारक राज्य की सम्प्रभुता को सर्वोच्च मानते हैं। उनके अनुसार राज्य ही राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकार सम्बन्धी सहमति पर हस्ताक्षर करते हैं एवं तद्नुरूप उनके क्रियान्वयन के लिए प्रतिबद्ध रोते हैं। इसलिए राज्यों की सम्प्रभुता के बने रहने पर मानवाधिकारों को समुचित ढंग से व्यावहारिक रूप दिया जा सकता है। वस्तुतः मानवाधिकारों को वैधानिक अथवा नैतिक कर्तव्य न मानकर वैश्विक तथा राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में एक सद्प्रयास स्वीकार किया जाना ही उचित व शुभ संकल्प होगा।

सन्दर्भ सूची

1. प्रो0 गिरीश पचौरी – शिक्षा और समाज, आर लाल बुक डिपो मेरठ।
2. डॉ0 रूचि हरीश आर्य – शिक्षा मनोविज्ञान, नील कमल पब्लिकेशन दिल्ली।
3. डॉ0 वी0बी0 सिंह, सुधा पहूजा, आर लाल बुक डिपो मेरठ।
4. डॉ0 एस0 पी0 गुप्ता, डॉ0 अल्का गुप्ता, सारदा बुक भवन इलाहाबाद।
5. प्रो0 रामानन्द गैरोला – मानव अधिकार, किताब महल पब्लिकेशन दिल्ली।
6. भारत सरकार (आत्म निर्भर भारत) अभियान दस्तावेज, 2020।
7. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय, नई शिक्षा नीति, 2020।
8. एस0 जोशी (2020), भारतीय दर्शन और आधुनिक शिक्षाशास्त्र, जयपुर – सुरभि प्रकाशन।
9. विवेकानन्द स्वामी (2009), प्राचीन भारतीय शिक्षा और संस्कृति पर व्याख्यान, कलाकत्ता – अद्वैत आश्रम।
10. जी0एस0 कुलकर्णी, (2012) भारतीय ज्ञान – परम्परा और आधुनिकता पुणें, भारतीय विद्या संस्थान।